Impact Factor (SJIF): 6.126 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 06/May/2025 IJRAW: 2025; 4(6):176-184 Accepted: 19/June/2025

भारतीय सांस्कृतिक विरासत की अवधारणा का दार्शनिक अध्ययन

*[1]रामानन्द कुलदीप और [2]नवोदित कुलदीप

*[1]सह–आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत।

[2]रिसर्च स्कॉलर, राजनीति विज्ञान, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत।

सारांश

किसी भी देश की सांस्कृतिक विरासत उसकी पहचान होती है, क्योंकि वो उनके मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं की संरक्षित निधि होती है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत विश्व की सर्वाधिक प्राचीन व समृद्ध परम्परा का उदाहरण है। यह एक जीवन्त परम्परा है जो सहस्त्राब्दियों से चली आ रही है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत अपने मूल्यों, आदर्शों, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य, सामाजिक आचार–विचार, जीवन–शैली और ज्ञान–परम्परा की समृद्धता के कारण विश्व में शाश्वत अस्तित्व रख पाई। भारत ऋषियों, मुनियों की तपोभूमि, द्वैत, अद्वैतवादी दार्शनिक विचारों की जननी, वेद, रामायण, महाभारत, गीता जैसी कालजयी रचनाओं की जन्मदात्री एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'अहिंसा परमो धर्मा:', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सिद्धान्तों की भारतीय सांस्कृतिक चेतना की आधारशिला रहा है। नालन्दा, तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय, योग, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, गणित, स्थापत्य भारत की प्राचीन अद्वितीय उपलब्धियाँ रही है। इसलिए आने वाली पीढ़ियों को दिशा देने के लिए इसका संरक्षण व संवर्द्धन आवश्यक है।

मुख्य शब्दः मूल्य, धर्म, वास्तुकला, वेद, अहिंसा, योग।

प्रस्तावना

सांस्कृतिक विरासत की अवधारणा का परिचय

सांस्कृतिक विरासत किसी समुदाय द्वारा विकसित जीवन जीने के तरीकों की अभिव्यक्ति है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। इसमें रीति–रिवाज, प्रथाएँ, वस्तुएँ, कलात्मक अभिव्यक्तियाँ और मूल्य शामिल हैं। यूनेस्को इस अवधारणा को एक गतिशील 'उत्पाद और प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित करता है, जो समाजों को अतीत में विरासत में मिले, वर्तमान में बनाए गए और भविष्य की पीढ़ियों के लाभ के लिए प्रदान किए गए संसाधनों का खजाना प्रदान करती है। यह परिभाषा संस्कृति के स्थिर संग्रह के बजाय उसके जीवन्त और विकसित होते स्वरूप पर बल देती है। "संस्कृति तत्त्वतः एक मूल्य व्यवस्था है, जिसका ज्ञान, संकेत गोचर आत्मबोध के विवेचन से होता है।" [1]

सांस्कृतिक विरासत में मूर्त और अमूर्त दोनों तत्त्व समाहित होते हैं। मूर्त विरासत में भौतक कलाकृतियाँ जैसे– भवन, स्मारक और कलात्मक रचनाएँ (उदाहरण के लिए राजस्थान के पहाड़ी किले, सूर्य मन्दिर) शामिल हैं। [2] इसके विपरीत अमूर्त विरासत में भाषा, ज्ञान, लोककथाएँ, परम्पराएँ, सामाजिक मूल्य और आध्यात्मिक विश्वास (उदाहरण के लिए, वैदिक मंत्रोच्चारण की परम्परा, रामलीला, कुम्भ मेला) शामिल हैं। 'सजीव विरासत' की अवधारणा विशेष रूप से संस्कृति को एक गतिशील और निरन्तर विकसित होने वाली प्रक्रिया मानती है, जिसे इसका अभ्यास करने वाले लोगों द्वारा लगातार आकार और पुनः आकार दिया जाता है।

भारत की सांस्कृतिक विरासत विश्व में सबसे प्राचीन होने के साथ–साथ सबसे समृद्ध और विविध विरासतों में से एक है। देश को अक्सर 'एक उपमहाद्वीप के भीतर एक उपमहाद्वीप' [3] के रूप में वर्णित किया जाता है, जो इसके गहरे और विविध इतिहास को दर्शाता है। प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर आज की जीवन्त संस्कृति तक, भारत की कहानी मिश्रित परम्पराओं, विश्वासों और

*Corresponding Author: रामानन्द कुलदीप

कलाओं की है, जिसे इसके अनेक जातीय समूहों और धर्मों ने आकार दिया है। इसी समृद्ध और बहुमूल्य सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत के कारण भारत को विश्व के महान आश्चर्यों और विविधताओं की भूमि के रूप में जाना जाता है। भारतीय संस्कृति, समग्र रूप से, सामाजिक मानदण्डों और प्रौद्योगिकियों की विरासत का प्रतिनिधित्व करती है जो इस बहु–भाषाई राष्ट्र से जुड़ी हुई हैं। *'The Culture and Art of India'* नामक पुस्तक में डॉ॰ राधाकमल मुखर्जी ने भारतीय संस्कृति को एक अखंड इकाई के रूप में देखा। "भारतीय संस्कृति एक जीवन्त विचारधारा है, जो केवल अतीत की स्मृति ही नहीं बल्कि वर्तमान सक्रिय अनुभव भी है।" [4] "भारतीय संस्कृति जीवन्त और स्वायत्त–चेतना है।" [5] "भारतीय संस्कृति की विशेषता इसकी जीवन्तता और आत्मसात करने की शक्ति है।" [6]

भारतीय सांस्कृतिक विरासत को एक स्थिर संग्रह के बजाय एक 'जीवन्त जीवन–पद्धति' के रूप में देखना महत्त्वपूर्ण है। [7] यह मात्र ऐतिहासिक कलाकृतियों का संकलन नहीं है, बल्कि यह सक्रिय प्रथाओं, ज्ञान–प्रणालियों और मूल्यों को समाहित करती है। यह लगातार विकसित होने वाली और उन लोगों द्वारा आकारित व पुनः आकारित होने वाली प्रक्रिया है जो इसका अभ्यास करते हैं। इस गतिशील स्वरूप से यह पता चलता है कि भारतीय सन्दर्भ में सांस्कृतिक विरासत को निष्क्रिय रूप से संरक्षित नहीं किया जाता है, बल्कि यह लगातार जीवित रहती है, अनुकूलित होती है और अगली पीढ़ियों द्वारा सह–निर्मित होती है। यह गतिशीलता एक केन्द्रीय दार्शनिक आधार है, जो यह दर्शाती है कि सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत के बारे में नहीं है, बल्कि वर्तमान में गहराई से निहित है और सक्रिय रूप से भविष्य को आकार देती है, जो सांस्कृतिक जीवन के निरन्तर, जीवन्त प्रवाह का प्रतिनिधित्व करती है।

भारत में मूर्त और अमूर्त विरासत की अन्तर्निहित अन्तर्सम्बद्धता एक समग्र विश्वदृष्टि को दर्शाती है। भौतिक स्मारक या कलाकृतियों (मूर्त) केवल संरचनाएँ नहीं है, बल्कि वे अपने रचनाकारों और उपयोगकर्त्ताओं के दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्यों (अमूर्त) को समाहित करती हैं। उदाहरण के लिए, एक मन्दिर (मूर्त) अपने भीतर की जाने वाली रस्मों (अमूर्त) और इन रस्मों द्वारा दर्शाए गए आध्यात्मिक विश्वासों से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। यह अन्तर–सम्बद्धता एक समग्र दार्शनिक दृष्टिकोण का सुझाव देती है जहाँ संस्कृति के भौतिक और अभौतिक पहलू एक–दूसरे के पूरक हैं और अविभाज्य है। यह समग्र दृष्टिकोण संरक्षण प्रयासों को अधिक जटिल और गहन बनाता है, जिसके लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जो न केवल भौतिक रूप को बल्कि उन जीवित परम्पराओं और अन्तर्निहित दर्शन को भी सुरक्षित रखता है जो इसे अर्थ प्रदान करते हैं।

भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन का महत्त्व

सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्तियों को व्यक्तिगत पहचान की गहरी भावना प्रदान करता है और अतीत, वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को जोड़ने में एक आवश्यक भूमिका निभाता है, जिससे एक मजबूत राष्ट्र और राष्ट्रीय पहचान के निर्माण के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार बनता है। यह लोगों को विशिष्ट सामाजिक मूल्यों, विश्वासों, धर्मों और रीति–रिवाजों से जोड़ता है, जिससे उन्हें अपनी पृष्ठभूमि को पहचानने में मदद मिलती है।

यह सांस्कृतिक विरासत सक्रिय रूप से सामाजिक सामंजस्य और साझा पहचान व अपनेपन की गहरी भावना को बढ़ावा देती है, जो क्षेत्रीय, भाषाई और धार्मिक सीमाओं को प्रभावी ढंग से पार करती है। इसका एक प्रमुख उदाहरण 'आरती' की परम्परा है, जो एक हिन्दू पूजा अनुष्ठान है और पूरे भारत के मन्दिरों में दैनिक रूप से किया जाता है, जो विविध समुदायों को एक साथ बाँधता है। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण से, सांस्कृतिक विरासत को 'हम कौन हैं इसका जीवन्त सार' और 'पहचान और निरन्तरता का जीवन–रक्त' बताया गया है, जो व्यक्तियों और समुदायों को अपनेपन और उद्देश्य की एक मौलिक भावना प्रदान करता है। यह एक सेतु का काम करती है, जो हमें याद दिलाती है कि हम कहाँ से आए हैं और हमें हमारे सम्भावित भविष्य की ओर मार्गदर्शन करती है। इसके अतिरिक्त, यह भारत के अद्वितीय सांस्कृतिक आख्यान के बारे में भविष्य की पीढ़ियों को शिक्षित करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह शिक्षा और नवाचार का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जिसमें वेद, उपनिषद और भगवद गीता जैसे प्राचीन ग्रन्थ गहन ज्ञान और नैतिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। यह समृद्ध विरासत विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मकता, नवाचार और अन्तःविषय सोच को सक्रिय रूप से बढ़ावा देती है। इसका महत्त्व पर्यावरण संरक्षण तक भी फैला हुआ है, क्योंकि यह पारम्परिक ज्ञान और प्रकृति के प्रति श्रद्धा में गहराई से निहित स्थायी प्रथाओं को बढ़ावा देती है, जिसका उदाहरण पवित्र उपवन हैं।

भारत की अद्वितीय विविधता में सांस्कृतिक विरासत राष्ट्रीय पहचान और सामाजिक सामंजस्य के लिए एक मूलभूत स्तम्भ है। भारत में 28 राज्य और 8 केन्द्र शासित प्रदेश हैं, जिनमें विभिन्न संस्कृतियाँ हैं, और यह विश्व का सबसे अधिक आबादी वाला देश है। सांस्कृतिक विरासत इस अत्यधिक बहुलवादी राष्ट्र को सक्रिय रूप से एकजुट करने में मदद करती है, जो इसकी विशाल भाषाई, धार्मिक और जातीय विविधताओं से उत्पन्न होने वाले संभावित विखंडन का प्रतिकार करती है। 'आरती' का उदाहरण जो पूरे भारत में क्षेत्रीय मतभेदों के बावजूद किया जाता है, यह दर्शाता है कि दार्शनिक मूल्यों में निहित साझा सांस्कृतिक प्रथाएँ कैसे शक्तिशाली एकीकृत शक्तियों के रूप में कार्य करती हैं।

यह एक सतत सांस्कृतिक एकीकरण और साक्षा अनुभव की प्रक्रिया है।

भारतीय दार्शनिक विचार में सांस्कृतिक विरासत का दोहरा उपयोगितावादी और अस्तित्त्वगत मूल्य है। यह एक ओर शिक्षा और नवाचार (ज्ञान, नैतिकता, समग्र स्वास्थ्य प्रदान करना, रचनात्मकता, अन्तःविषय सोच को बढ़ावा देना), रोजगार सृजन (पर्यटन और हस्तशिल्प के माध्यम से), पर्यावरण संरक्षण (स्थायी प्रथाओं को बढ़ावा देना), और सॉफ्ट पॉवर व सांस्कृतिक कूटनीति में योगदान जैसे व्यावहारिक लाभ प्रदान करता है। दूसरी ओर, यह उद्देश्य की भावना प्रदान करता है, और जीवन, मृत्यु और आध्यात्मिकता को समझने के लिए दार्शनिक व सांस्कृतिक सन्दर्भ प्रदान करता है। मानव–जीवन का अन्तिम उद्देश्य इस संसार की माया से मुक्ति प्राप्त करना और परमात्मा के साथ एकाकार होना है। यह दोहरा जोर स्पष्ट सामाजिक लाभों और गहन अस्तित्त्वगत अर्थ रूप से उपयोगी नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की स्वयं की समझ, उद्देश्य और वास्तविकता को मौलिक रूप से आकार देती है। इसका मूल्य केवल उपयोगितावादी नहीं है, बल्कि यह गहराई से आध्यात्मिक और नैतिक भी है, जो व्यक्तियों को एक सार्थक अस्तित्व की ओर मार्गदर्शन करता है।

भारतीय दर्शन में सांस्कृतिक विरासत की अवधारणा

मूर्त और अमूर्त विरासतः दार्शनिक अन्तर्दृष्टि

भारत में सांस्कृतिक विरासत को मूर्त और अमूर्त दोनों तत्त्वों को समाहित करने वाला माना जाता है। मूर्त विरासत में भौतिक कलाकृतियों जैसे भवन, स्मारक और कलात्मक रचनाएँ (उदाहरणः राजस्थान के पहाड़ी किले, सूर्य मन्दिर) शामिल हैं। इसके विपरीत, अमूर्त विरासत में प्रथाएँ, प्रतिनिधित्व, अभिव्यक्तियाँ, ज्ञान, कौशल, परम्पराएँ, भाषाएँ, मूल्य और विश्वास (उदाहरणः वैदिक मंत्रोच्चारण की परम्परा, रामलीला और कुम्भ मेला) शामिल हैं।

एक प्रमुख दार्शनिक अन्तर्दृष्टि यह है कि भौतिक कलाकृतियों का महत्त्व अन्तर्निहित दार्शनिक मूल्यों की पृष्ठभूमि में गहराई से व्याख्या किया जाता है। अमूर्त सांस्कृतिक विरासत, जिसे अक्सर विशिष्ट ऐतिहासिक अवधियों के दौरान सामाजिक रीति–रिवाजों के माध्यम से बनाए रखा जाता है, में सामाजिक–मूल्य, परम्पराएँ, रीति–रिवाज, प्रथाएँ, सौन्दर्य और आध्यात्मिक विश्वास और कलात्मक अभिव्यक्ति जैसे महत्त्वपूर्ण पहलू शामिल हैं। यह उल्लेखनीय है कि अमूर्त विरासत, अपने गैर–भौतिक स्वरूप के कारण, अक्सर भौतिक वस्तुओं की तुलना में संरक्षित करना अधिक चुनौतीपूर्ण मानी जाती है। इन दोनों रूपों की अन्तर–सम्बद्धता एक परिभाषित विशेषता है; और स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मूर्त और अमूर्त पहलू एक–दूसरे से दृढ़ता से जुड़े हुए हैं। इस समग्र दृष्टिकोण को भारत की सांस्कृतिक विरासत के एक प्रमुख तत्त्व के रूप में भारतीय ज्ञान–प्रणालियों (IKS) के समावेश से और मजबूत किया जाता है। IKS में ज्ञान, विज्ञान (कठोर विश्लेषण) और जीवन दर्शन शामिल हैं, जो सदियों के अनुभव, अवलोकन, प्रयोग और कठोर विश्लेषण से विकसित हुए हैं, जिसके उदाहरण योग और आयुर्वेद हैं। भारतीय सन्दर्भ में मूर्त और अमूर्त विरासत की अन्तर्निहित अन्तर–सम्बद्धता का दार्शनिक आधार यह है कि भौतिक रूप जैसे मन्दिर, मूर्तियाँ और प्राचीन ग्रन्थ केवल जड़ वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि गहरे दार्शनिक और आध्यात्मिक मूल्यों के अभिव्यक्ति या अवतार हैं। उदाहरण के लिए एक मन्दिर का वास्तुशिल्प डिजाइन (मूर्त) अक्सर वास्तु–शास्त्र (अमूर्त ज्ञान प्रणाली) द्वारा निर्देशित होता है, और भीतर के देवता जीवित भक्ति प्रथाओं (अमूर्त) के लिए केन्द्रीय होते हैं। रूप और सार, या पदार्थ और आत्मा की अविभाज्यता की यह अन्तर्निहित दार्शनिक समझ का अर्थ है कि संरक्षण प्रयासों को खंडित नहीं किया जा सकता है; कोई भी भौतिक संरचना को वास्तव में तब तक संरक्षित नहीं कर सकता जब तक कि वह उन जीवित परम्पराओं और दर्शन को न समझे और बनाए न रखे जिन्होंने इसे अर्थ दिया और इसे चेतन करना जारी रखा।

भारतीय सांस्कृतिक विरासत के भीतर 'जीवन दर्शन' (जीवन का दर्शन) का समावेश इसके व्यावहारिक और जीवन्त आयाम पर प्रकाश डालता है। और स्पष्ट रूप से 'भारतीय ज्ञान प्रणालियों' को सांस्कृतिक विरासत के एक प्रमुख तत्त्व के रूप में सूचीबद्ध करते हैं, यह निर्दिष्ट करते हुए कि इसमें ज्ञान, विज्ञान और जीवन–दर्शन शामिल हैं। जबकि ज्ञान बौद्धिक समझ से सम्बन्धित है और विज्ञान अनुभवजन्य जाँच से, जीवन–दर्शन संस्कृति में निहित व्यावहारिक, जीवन्त ज्ञान को इंगित करता है। योग और आयुर्वेद को उदाहरण के रूप में शामिल करना इस बात को दृढ़ता से पुष्ट करता है, क्योंकि वे केवल सैद्धान्तिक प्रणालियाँ नहीं हैं, बल्कि समग्र स्वास्थ्य और कल्याण के लिए व्यापक अभ्यास हैं, जो सीधे दैनिक जीवन और नैतिक आचरण को प्रभावित करते हैं। यह दर्शाता है कि भारत में दार्शनिक अवधारणाएँ अमूर्त अकादमिक प्रवचन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सक्रिय रूप से जीवित रहती हैं, व्यक्त होती हैं और इसके लोगों के रोजमर्रा के अनुभवों और सांस्कृतिक प्रथाओं में एकीकृत होती हैं। इस प्रकार, सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत की उपलब्धियों का भंडार नहीं है, बल्कि अस्तित्व का एक गतिशील और कार्यात्मक पहलू है, जो जीवन के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका प्रदान करती है।

सजीव विरासत और गतिशील संस्कृति

सजीव विरासत की अवधारणा भारतीय संस्कृति को समझने के लिए केन्द्रीय है, जो भौतिक स्मारकों और कलाकृतियों के स्थिर संरक्षण से परे है। यह संस्कृति को एक गतिशील और निरन्तर विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में देखती है, जिसे इसका अभ्यास करने वाले लोग सक्रिय रूप से आकार और पुनः आकार देते हैं। यह गतिशील प्रकृति भारत की सांस्कृतिक विरासत के वर्णन में 'विविधता और परम्परा की जीवन्त टेपेस्ट्री' के रूप में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस सन्दर्भ में सांस्कृतिक विरासत परम्पराओं, विश्वासों और जीवन जीने

के तरीकों पर आधारित है जो व्यक्तियों और समुदायों को उद्देश्य और जीवन जीने का एक विशिष्ट तरीका प्रदान करते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समय के साथ समाज के भीतर उभरती और परिपक्व होती है। भारत का सांस्कृतिक आख्यान मिश्रित परम्पराओं, विश्वासों और कलाओं की कहानी से चिह्नित है, जिसे इसके असंख्य जातीय समूहों और धर्मों द्वारा लगातार आकार दिया जाता है, जिससे वर्तमान अतीत से सहज रूप से जुड़ता है। 'सजीव' पहलू निरन्तरता और सम्बर्द्धन के लिए एक दार्शनिक अनिवार्यता है, न कि केवल स्थिर संरक्षण। 'सजीव विरासत' की अवधारणा को प्रस्तुत करता है जो यह मानती है कि "संस्कृति एक गतिशील और निरन्तर विकसित होने वाली प्रक्रिया है। इसे लगातार उन लोगों द्वारा आकार दिया गया है और फिर से आकार दिया जा रहा है जो इसका अभ्यास करते हैं।" यह परिभाषा स्वाभाविक रूप से विरासत के एक स्थिर दृष्टिकोण के विपरीत है। आगे कहता है कि "शास्त्रीय सभ्यताओं, विशेष रूप से भारतीय ने परम्परा के संरक्षण को सर्वोच्च महत्त्व दिया है... नैतिकता ने माना कि जो विरासत में मिला है उसे उपभोग नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसे अगली पीढ़ियों को, सम्भवतः समृद्ध करके सौंप दिया जाना चाहिए। यह सभी के लिए एक नैतिकता अनिवार्यता थी. . .।" विचारों का यह संयोजन बताता है कि भारतीय दर्शन के लिए, सांस्कृतिक विरासत केवल कलाकृतियों को जैसे वे थे (एक स्थिर स्नैपशॉट) संरक्षित करने के बारे में नहीं है, बल्कि जीवित परम्परा की निरन्तरता और जीवन–शक्ति सुनिश्चित करने के बारे में है। जोर सक्रिय अभ्यास, अनुकूलन और वर्तमान पीढ़ियों द्वारा सम्बर्द्धन पर है, जो अन्तर–पीढ़ीगत जिम्मेदारी और गतिशील विकास की नैतिक कर्त्तव्य को दर्शाता है। यह सजीव विरासत की अवधारणा को भारतीय दार्शनिक नैतिकता में गहराई से निहित करता है।

भारतीय ज्ञान–प्रणालियों (IKS) और सांस्कृतिक विरासत का अन्तर्सम्बन्ध

भारतीय ज्ञान–प्रणालियों (IKS) विश्वासों, प्रथाओं और दर्शनों का एक विशाल और गहन समृद्ध संग्रह है जो भारत में पीढ़ियों से चला आ रहा है। इसमें दर्शन, धर्म, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, ज्योतिष और साहित्य जैसे विविध क्षेत्र शामिल हैं। IKS की एक विशेषता इसका समग्र दृष्टिकोण है, जो सभी प्राणियों और ब्रह्मांड के गहरे अन्तर्सम्बन्ध और अन्तर्निर्भरता पर जोर देता है, एक सिद्धान्त जैसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (पूरी दुनिया एक परिवार है) की अवधारणा में खूबसूरती से समाहित किया गया है।

भारतीय ज्ञान–प्रणालियों की मूलभूत आधारशिला वेदों के प्राचीन ग्रन्थों में निहित है, जिन्हें विश्व के सबसे पुराने धर्मग्रन्थों में से एक माना जाता है, जो लगभग 1500 ईसा पूर्व में रचे गए थे। इन ग्रन्थों में भजन, अनुष्ठान, ब्रह्मांड विज्ञान, नैतिकता और आध्यात्मिकता सहित ज्ञान की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र ज्ञान का एक शास्त्रीय चतुर्गुणी वर्गीकरण प्रदान करता है। जो IKS की व्यापकता को दर्शाता है:

त्रयीः तीन वेदों का ज्ञान, जिसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद शामिल हैं,

आन्वीक्षिकीः तर्क, जाँच और दर्शन, जिसमें न्याय, सांख्य और योग जैसी प्रणालियाँ शामिल हैं,

वार्ताः कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से सम्बन्धित व्यावहारिक ज्ञान, और

दंडनीतिः राज्यशास्त्र और शासन। [8]

भारतीय दर्शन के मूल सिद्धान्त और सांस्कृतिक विरासत का ताना–बाना

धर्म, कर्म और मोक्षः जीवन के उद्देश्य के रूप में

ये तीन अवधारणाएँ अर्थ (भौतिक समृद्धि) और काम (इन्द्रिय सुख) के साथ मिलकर पुरुषार्थ का निर्माण करती हैं, जो भारतीय दर्शन के लिए मौलिक हैं और भारतीय जीवन–शैली के मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप में काम करती हैं। धर्म एक केन्द्रीय अवधारणा है जिसमें धार्मिकता, कर्त्तव्य और नैतिक आचरण शामिल है, जो धार्मिक जीवन जीने और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रदान करता है। यह भारतीय आध्यात्मिकता के मूल में निहित है। कर्म सार्वभौमिक सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है कि प्रत्येक क्रिया, चाहे अच्छी हो या बुरी के अनिवार्य रूप से ऐसे परिणाम होते हैं जो व्यक्ति के वर्तमान और भविष्य के जीवन को प्रभावित करेंगे। यह अवधारणा भारतीय विचार में गहराई से निहित है और पुनर्जन्म के चक्र से आन्तरिक रूप से जुड़ी हुई है। मोक्ष आध्यात्मिक मुक्ति, परम पारगमन और जन्म और मृत्यु के अन्तहीन चक्र (संसार) से मुक्ति का प्रतीक है। इसे मानव–जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना जाता है, जिसमें परमात्मा के साथ गहन एकाकार होना शामिल है। वास्तव में, विभिन्न भारतीय दर्शनों में एक सामान्य विषय व्यक्ति को दुःख और संसार के चक्र से आध्यात्मिक प्रथाओं की विविध श्रृंखला के माध्यम से मुक्ति दिलाना है।

'तत्त्वर्थज्ञानात् अपवर्गः. . .,' [9] 'यत इन्द्रिय मनो बुद्धिर्मुनिर मोक्ष–परायण. . . सदा मुक्त एव सः' [10] 'जरा–मरण मोक्षाय मामाश्रित्यं. . . ब्रह्म तद्विदुः' [11]।

पुरुषार्थ एक उद्देश्यपूर्ण मानव अस्तित्व के लिए एक समग्र ढाँचा प्रदान करते हैं, जो भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक आयामों को व्यवस्थित रूप से एकीकृत करते हैं। और लगातार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उन्हें जीवन के समग्र दृष्टिकोण और एक सार्थक और पूर्ण जीवन के लिए एक ढाँचा के रूप में परिभाषित करते हैं। यहाँ दार्शनिक महत्त्व यह है कि यह ढाँचा केवल एक सैद्धान्तिक निर्माण नहीं है, बल्कि मानव उत्कर्ष के लिए एक व्यावहारिक, सांस्कृतिक रूप से अन्तर्निहित खाका है। अर्थ (भौतिक कल्याण) और काम (इन्द्रिय सुख) को धर्म (धार्मिकता) और मोक्ष (मुक्ति) के

साथ जानबूझकर शामिल करना यह दर्शाता है कि भारतीय दर्शन सार्वभौमिक रूप से सांसारिक जीवन के पूर्ण त्याग की वकालत नहीं करता है। इसके बजाय, यह मानव अस्तित्व के सभी पहलुओं का एक सन्तुलित और एकीकृत अनुसरण को बढ़ावा देता है, बशर्ते उन्हें एक नैतिक ढाँचे के भीतर किया जाए। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत, आर्थिक प्रथाओं से लेकर आध्यात्मिक अनुष्ठानों तक विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, इस अन्तर्निहित दार्शनिक सन्तुलन को दर्शाती है, जहाँ भौतिक समृद्धि और आनन्द परम आध्यात्मिक मुक्ति की ओर वैध और यहाँ तक कि आवश्यक कदम हैं, जब तक कि उन्हें धार्मिक रूप से संचालित किया जाता है।

कर्म और पुनर्जन्म वे कारण तंत्र हैं जो भारतीय सांस्कृतिक प्रथाओं के भीतर नैतिक अनिवार्यताओं को रेखांकित और सुदृढ़ करते हैं और स्पष्ट रूप से बताते हैं कि भारतीय दर्शन कर्म सिद्धान्त (जैसा हम बोते हैं वैसा ही हम काटते हैं) और पुनर्जन्म में दृढ़ता से विश्वास करता है। स्पष्ट रूप से पुनर्जन्म को इस विचार से जोड़ता है कि आत्मा अपने कर्मों का पूरा फल एक ही जीवन में प्राप्त नहीं कर सकती है, जिससे आगे के जन्मों की आवश्यकता होती है। आगे जोर देता है कि यह विश्वास प्रणाली ने भारत में कई बाद की दार्शनिक औरर धार्मिक परम्पराओं की नींव रखी, जिसमें बौद्ध–धर्म और जैन–धर्म शामिल हैं, और व्यक्ति के कार्यों के लिए व्यक्तिगत जिम्मेदारी के महत्त्व पर जोरी देती है। यह एक सीधा और गहरा कारण सम्बन्ध स्थापित करता हैः कर्म और पुनर्जन्म में दार्शनिक विश्वास इस जीवन में नैतिक आचरण (धर्म) को अनिवार्य बनाता है, क्योंकि व्यक्ति के कार्य सीधे भविष्य के अस्तित्व को निर्धारित करते हैं। वैदिक ऋत सिद्धान्त इसका उदाहरण है– 'ऋतं च सत्यं चाभद्वान्तपसोऽध्यजायत।' [12] अर्थात् यहाँ ऋत सृष्टि के नैतिक व सांस्कृतिक क्रम को दर्शाता है। यह कर्म सिद्धान्त का आधार है।

नतीजतन, सांस्कृतिक प्रथाएँ, अनुष्ठान, नैतिक शिक्षाएँ और सामाजिक मानदण्ड (सांस्कृतिक विरासत के सभी तत्त्व) इस कर्मिक समझ में गहराई में अन्तर्निहित हैं, जो व्यक्तियों को सदाचारी कार्यों की ओर और अन्ततः दुःख के चक्र से मुक्ति की ओर मार्गदर्शन करने के लिए व्यावहारिक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। यह दर्शाता है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत केवल अभिव्यंजक नहीं है बल्कि मौलिक रूप से आदेशात्मक है, जो जीवन भर कारण और प्रभाव के बारे में गहन आध्यात्मिक मान्यताओं के आधार पर व्यवहार को निर्देशित करती है।

आत्मा, ब्रह्म और चेतना की अवधारणाएँ

आत्मा (व्यक्तिगत आत्म या आत्मा) और ब्रह्म (परम वास्तविकता 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' या सर्वोच्च चेतना) की अवधारणाएँ कई भारतीय दार्शनिक परम्पराओं, विशेष रूप से वेदान्त के लिए केन्द्रीय हैं। [13] वेदान्त का दावा है कि आत्मा अन्ततः ब्रह्म के समान है, इसे शाश्वत, अपरिवर्तनीय और भौतिक शरीर और मन से परे मानता है, जो व्यक्ति के सच्चे स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। आत्मा और ब्रह्म के बीच इस गहन पहचान को प्राप्त करना आध्यात्मिक मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने की कुंजी माना जाता है।

भारतीय दर्शन मानवीय अनुभवों से उत्पन्न होने वाले आध्यात्मिक प्रश्नों से गहराई से जुड़ा हुआ है, जहाँ दिव्य और मानवीय क्षेत्र को समझ के निर्माण में साझा करते हुए देखा जाता है, जिसका व्यावहारिक दैनिक जीवन (साधना) के लिए सीधा निहितार्थ है। इस सन्दर्भ में जीवन का अन्तिम उद्देश्य अक्सर इस दुनिया की माया (भ्रम) से मुक्ति और परमात्मा के साथ एकाकार होना समझा जाता है। चेतना विभिन्न विद्यालयों में एक आवर्ती और बहुआयामी विषय है। उदाहरण के लिए, सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो पुरुष (निष्क्रिय, व्यक्तिगत चेतना) और प्रकृति (अचेतन, भौतिक सिद्धान्त) के बीच अन्तर करता है। योग, सांख्य से निकटता से जुड़ा हुआ है, मन और चेतना के सिद्धान्तों पर भी विस्तार से ध्यान केन्द्रित करता है, उनके नियन्त्रण और परिवर्तन के लिए तकनीकें प्रदान करता है। 'परमात्मा के साथ एकाकार' की अवधारणा को भारत में आध्यात्मिकता का एक मूल सिद्धान्त माना जाता है, जो यह आकार देता है कि समुदाय जीवन, मृत्यु और करने को कैसे समझते हैं।

वास्तविकता के मूलभूत अद्वैतवादी/द्वैतवादी दृष्टिकोण विविध भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों के मूल दार्शनिक चालक हैं। और वेदान्त की केन्द्रीय अवधारणा पर प्रकाश डालते हैं कि आत्मा और ब्रह्म समान हैं, जो परम वास्तविकता के एक अद्वैतवादी (एकात्मक) दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'अहम् ब्रह्मास्मि' [14], 'अयम् आत्मा ब्रह्म' [15] 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' [16] इसके विपरीत, और सांख्य के पुरुष (चेतना) और प्रकृति (पदार्थ) के द्वैतवादी दृष्टिकोण का वर्णन करते हैं, जहाँ मुक्ति दोनों के बीच अन्तर करने से आती है। अपनी तुलना तालिका में दिखात है कि कैसे विभिन्न विद्यालय आत्मा और एक निर्माता देवता जैसी अवधारणाओं की पुष्टि या खण्डन करते हैं। वास्तविकता की इस मूलभूत दार्शनिक भिन्नता (एकात्मवाद बनाम द्वैतवाद या इसके विभिन्न रूप) के सांस्कृतिक विरासत की अभिव्यक्ति के लिए गहन निहितार्थ हैं।

अहिंसा, वसुधैव कुटुम्बकम् और प्रकृति के साथ सामंजस्य

अहिंसा भारतीय नैतिकता में एक मौलिक और व्यापक सिद्धान्त है, जिसने विचार और व्यवहार को गहराई से प्रभावित किया है, और महात्मा गाँधी के अहिंसक प्रतिरोध जैसे आन्दोलनों को प्रेरित किया है। 'अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। [17] वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ है 'पूरी दुनिया एक परिवार है' जो सभी प्राणियों के बीच गहरे अन्तर्सम्बन्ध और अन्तर्निर्भरता पर जोर देता है। प्रकृति के साथ सामंजस्य भारतीय दर्शन का एक और महत्त्वपूर्ण

पहलू है, जहाँ पर्यावरण को एक पवित्र इकाई के रूप में देखा जाता है, जो मनुष्यों और प्रकृति के बीच अन्तर्सम्बन्ध पर जोर देता है, सभी जीवित चीजों के प्रति श्रद्धा को बढ़ावा देता है और पर्यावरण के साथ एक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध की वकालता करता है। वैदिक युग में, प्रकृति की पूजा शुरू हुई, जिसमें कई श्लोक, प्रार्थनाएँ और भजन प्रकृति के प्रति नैतिक सम्मान व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए अथर्ववेद का एक श्लोक कहता है– 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' [18] (पृथ्वी मेरी माता है, और मैं उसका पुत्र हूँ।) जो पृथ्वी के साथ एक पोषण सम्बन्ध को बढ़ावा देता है। स्कन्दपुराण का एक और श्लोक 'समुद्र वसने देवी पर्वत स्थान मंडले, विष्णु पत्नी नमस्तेभ्यं पद स्पर्श क्षमस्व में' (हे देवी पृथ्वी! स्मुद्रों और पहाड़ों में सुशोभित, भगवान विष्णु की पत्नी, मैं आपको नमन करता हूँ। मुझे आप पर चलने के लिए क्षमा करो।) पृथ्वी के प्रति गहरे सम्मान और कृतज्ञता को प्रोत्साहित करता है। ऋग्वेद के भूमि सूक्त में पृथ्वी को माँ कहा है। [19] कर्म और धर्म के सिद्धान्त भी पर्यावरण नैतिकता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, यह मानते हुए कि पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कार्य ब्रह्मांडीय सन्तुलन को बाधित करते हैं और नकारात्मक कर्म का परिणाम होते हैं। भारत की स्वदेशी संस्कृतियों में लम्बे समय से गहरी पारिस्थितिक चेतना रही है, जो प्रकृति को एक जीवित इकाई के रूप में देखती है, न कि केवल हावी होने वाली वस्तु के रूप में।

भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों में निहित गहरा पारिस्थितिक और सार्वभौमिक मानवतावादी लोकाचार अहिंसा को मनुष्यों से परे सभी जीवन तक विस्तारित करता है। वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा वैश्विक एकता को बढ़ावा देती है, यह दर्शाती है कि कैसे भारतीय दर्शन केवल मानव–केन्द्रित दृष्टिकोण से परे जाता है। प्रकृति को पवित्र और अन्तर्सम्बन्ध (केवल एक संसाधन नहीं) मानने का दार्शनिक आधार स्थायी जीवन और वैश्विक सद्भाव के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रदान करता है। यह दृष्टिकोण पश्चिमी पर्यावरण नैतिकता के विपरीत है जो अक्सर मानव हितों को प्राथमिकता देती है। यह दार्शनिक समझ सांस्कृतिक प्रथाओं में परिलक्षित होती है जो प्रकृति के साथ सामंजस्य को बढ़ावा देती है, जैसे पवित्र उपवन और पारम्परिक अनुष्ठान जो पारिस्थितिक सन्तुलन का सम्मान करते हैं। यह दर्शाता है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत केवल परम्पराओं का संग्रह नहीं है, बल्कि एक जीवित, साँस लेने वाली प्रणाली है जो गहरे नैतिक और पारिस्थितिक सिद्धान्तों से निर्देशित होती है, जो आधुनिक दुनिया के लिए मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करती है।

प्रमुख दार्शनिक प्रणालियों का योगदान

भारतीय दर्शन में कई प्रमुख प्रणालियाँ शामिल है, जिनमें से प्रत्येक ने सांस्कृतिक विरासत को आकार देने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ये प्रणालियाँ न केवल सैद्धान्तिक ढाँचे प्रदान करती हैं बल्कि जीवन जीने के तरीकों, सामाजिक संरचनाओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों को भी प्रभावित करती हैं।

1. वेदान्त–दर्शन

वेदान्त–दर्शन हिन्दू–दर्शन का एक अभिन्न अंग है, जो आध्यात्मिक विकास और समझ के लिए व्यक्तियों का मार्गदर्शन करता है। यह उपनिषदों पर आधारित है, जो 800–200 ईसा पूर्व के हैं और वास्तविकता, स्वयं और परम सत्य के बारे में आध्यात्मिक सत्यों की पड़ताल करते हैं। वेदान्त का केन्द्रीय विचार आत्मा (व्यक्तिगत आत्म) और ब्रह्म (परम वास्तविकता) की पहचान है, यह मानते हुए कि आत्मा शाश्वत है और भौतिक शरीर और मन से परे है, जो व्यक्ति के सच्चे स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। आत्मा और ब्रह्म के बीच इस पहचान को महसूस करना आध्यात्मिक मुक्ति (मोक्ष) की कुंजी माना जाता है। भगवद्गीता, महाभारत का एक हिस्सा, वेदान्त–दर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, जो निःस्वार्थ सेवा, कर्म के फलों से अनासक्ति, भक्ति और ज्ञान के मार्ग के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करती है। आधुनिक सन्दर्भ में योग और आयुर्वेद जैसे वेदान्त के सिद्धान्तों में निहित अभ्यास, समग्र स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देते हैं, जो तनाव और चिन्ता को कम करने में सकारात्मक प्रभाव दिखाते हैं। वेदान्त को सनातन–धर्म या हिन्दू–धर्म से भी जोड़ा गया है। आदि शंकराचार्य जैसे महान शिक्षकों ने वैदिक ऋषियों की मूल अन्तर्दृष्टि और गीता की शिक्षाओं का विस्तार किया और वेदान्त को एक सुसंगत, व्यापक दर्शन प्रणाली के रूप में स्थापित किया। श्री रामकृष्ण ने अतीत के ऋषियों और सन्तों के आध्यात्मिक अनुभव की पूरी श्रृंखला को पुनर्जीवित करके वेदान्त के सत्यों को फिर से मान्य किया, जिससे आधुनिक समय में वेदान्त का पूर्ण कायाकल्प हुआ।

2. न्याय–दर्शन

न्याय–दर्शन भारतीय दर्शन में छह आस्तिक प्रणालियों में से एक है, जो तर्क, कार्यप्रणाली और ज्ञानमीमांसा के सिद्धान्त के व्यवस्थित विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। न्याय का मुख्य उद्देश्य मानव पीड़ा को समाप्त करना है, जो वास्तविकता की अज्ञानता से उत्पन्न होती है। मुक्ति सही ज्ञान के माध्यम से प्राप्त होती है, और इस प्रकार न्याय सही ज्ञान के साधनों से सम्बन्धित है। न्याय विद्यालय ज्ञान के चार वैध साधन मानता हैः प्रत्यक्ष (धारणा), अनुमान (अनुमान), उपनाम (तुलना) और शब्द (गवाही)। न्याय विद्वानों ने त्रुटि का एक सिद्धान्त भी विकसित किया, ताकि त्रुटियों की पहचान करने और ज्ञान की मानवीय खोज में त्रुटियों को बनाने की प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से स्थापित किया जा सके।

न्याय का भारतीय ज्ञानमीमांसा और तर्कशास्त्र में मूलभूत योगदान है, जिसने विविध दार्शनिक विद्यालयों में बौद्धिक प्रवचन को आकार दिया है।

3. सांख्य–दर्शन

सांख्य–दर्शन को भारतीय परम्परा द्वारा सबसे पुराने शास्त्रीय हिन्दू विद्यालयों में से एक माना जाता है। यह भारतीय दर्शन में अपने द्वैतवादी मॉडल के लिए सबसे प्रसिद्ध है, जिसमें पुरुष (निष्क्रिय, व्यक्तिगत चेतना) और प्रकृति (अचेतन, संज्ञानात्मक–संवेदनशील शरीर) के बीच अन्तर किया जाता है। अपने शास्त्रीय सूत्रीकरण में, पुरुष/मॉडल को पच्चीस घटकों (तत्त्व) में विश्लेषित किया जाता है, जो व्यक्तियों के रूप में उनके अवतार और उस दुनिया के रचनात्मक और व्याख्यात्मक प्रक्षेपण के सन्दर्भ में पूरे आध्यात्मिक, संज्ञानात्मक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक और भौतिक दुनिया को समाहित करने का इरादा रखते हैं। सांख्य–दर्शन कर्म और उसके परिणामों के महत्त्व पर भी जोर देता है, यह मानते हुए कि प्रत्येक क्रिया का एक प्रभाव होता है, और यह प्रभाव हमारे भविष्य के कार्यों को निर्धारित करता है।

सांख्य का द्वैतवादी ढाँचा विविध मोक्षवादी मार्गों के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है और भारतीय विचार प्रणालियों पर इसका स्थायी प्रभाव है। पुरुष और प्रकृति के बीच इसका स्पष्ट अन्तर–चेतना और पदार्थ के बीच एक मौलिक विभाजन प्रदान करता है, जो मुक्ति के लिए विभिन्न रणनीतियों का आधार बनता है। सांख्य का यह दृष्टिकोण कि मुक्ति ज्ञान के माध्यम से प्राप्त होती है, अनुष्ठानों पर ज्ञान की प्रभावकारिता पर जोर देता है, जो कई अन्य भारतीय दार्शनिक प्रणालियों में भी परिलक्षित होता है।

4. योग–दर्शन

योग एक प्राचीन भारतीय अभ्यास है जिसका दर्शन भारत में समाज के कार्य करने के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है, चाहे वह स्वास्थ्य और चिकित्सा या शिक्षा और कला जैसे क्षेत्रों से सम्बन्धित हो। योग का उद्देश्य मन को शरीर और आत्मा के साथ एकजुट करना है ताकि अधिक मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक कल्याण प्राप्त हो सके। यह आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करने, दुःख को कम करने और मुक्ति की स्थिति प्राप्त करने के लिए डिजाइन किए गए आसनों, ध्यान, नियन्त्रित श्वास, शब्द जप और अन्य तकनीकों की एक श्रृंखला से बना है। यह युवा और वृद्धों द्वारा लिंग, वर्ग या धर्म के भेदभाव के बिना अभ्यास किया जाता है और दुनिया के अन्य हिस्सों में भी लोकप्रिय हो गया है। पारम्परिक रूप से योग को गुरु–शिष्य मॉडल (मास्टर–शिष्य) का उपयोग करके प्रसारित किया जाता था, जिसमें योग गुरु सम्बन्धित ज्ञान और कौशल के मुख्य संरक्षक होते थे।

भारत के उपराष्ट्रपति ने योग को भारत की सबसे बड़ी विरासत और दुनिया को सबसे शानदार उपहार बताया है। योग मन और शरीर के बीच एकता लाता है और दुनिया में एकता के लिए एक शक्ति के रूप में कार्य करता है। योग से जुड़ी ध्यान तकनीकें अभ्यासकर्त्ता के भीतर गहरी शान्ति, सन्तुष्टि और सच्ची शान्ति की भावना को प्रेरित करती हैं। योग में निहित शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रथाओं का समूह लोगों का आत्म–नियन्त्रण का अभ्यास करने, इन्द्रियों पर प्रभुत्व का प्रयोग करने और सन्तुलन बनाए रखने में मदद करता है। इसके विभिन्न आसन शरीर को मजबूत करने, लचीलेपन, सहनशक्ति और लचीलापन में सुधार करने और अतिरिक्त कैलोरी जलाने में मदद करते हैं, जिससे फिटनेस और अच्छा स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' [20] अर्थात् शान्ति और स्थिर मन के लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। योग भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों का एक व्यावहारिक अवतार है, जो समग्र कल्याण के लिए आध्यात्मिक और शारीरिक को जोड़ता है।

5. बौद्ध–दर्शन

बौद्ध–धर्म, 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व में सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) द्वारा स्थापित, दुःख को इच्छाओं के कारण मानता है और निर्वाण प्राप्त करने के लिए अष्टांगिक मार्ग का पालन करने पर जोर देता है। बौद्ध शिक्षाओं ने उस समय के सामाजिक मानदण्डों, अनुष्ठानवाद, बलिदान और पुरोहित वर्ग के प्रभुत्व को अस्वीकार कर दिया, जिससे भारत में धार्मिक विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ा। बौद्ध–धर्म अपनी सादगी और समझने में आसानी के कारण आम लोगों को आकर्षित करता था, और धर्मग्रन्थ और शिक्षण–विधि, और मठवासी व्यवस्था आमतौर पर बोली जाने वाली भाषा में दी जाती थी। इसने सामाजिक समानता और लोकतान्त्रिक मूल्यों को जबरदस्त बढ़ावा दिया।

बौद्ध–धर्म का भारतीय कला और वास्तुकला और विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रभाव है। साँची, भरहुत, अमरावती, तक्षशिला, बोधगया, नालन्दा और अन्य स्थानों पर निर्मित स्तूप, मूर्तियाँ और चित्रकला, विहार और चैत्य शानदार हैं और उस समय की कला के उत्कर्ष को दर्शाते हैं। अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में बने भित्ति–चित्र बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं के मार्मिक दृश्यों को दर्शाते हैं, जो बौद्ध–धर्म की नैतिक शिक्षाओं को दर्शाते हैं। बौद्ध–धर्म ने भारत और विदेशी देशों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए, जिससे एशिया में बौद्ध–धर्म का प्रसार हुआ। इसने आधुनिक हिन्दू समाज के निर्माण को भी बहुत प्रभावित किया, जिसमें 'अहिंसा परमो धर्मः' के विश्वास को लोकप्रिय बनाया गया।

6. जैन–दर्शन

जैन–धर्म 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व में 24वें तीर्थंकर महावीर द्वारा स्थापित, अहिंसा, करुणा और आत्म–अनुशासन के सिद्धान्तों पर जोर देता है। जैन–धर्म ने आत्मा को शुद्ध करने और मुक्ति प्राप्त करने के साधन के रूप में कठोर तपस्या और आत्म–अनुशासन की वकालत की। जैन–धर्म में अहिंसा का सिद्धान्त बौद्ध–धर्म की तुलना में भी अधिक कठोर था, जिसके कारण शाकाहार और छोटे से छोटे जीव को भी नुकसान पहुँचाने से बचने के लिए सावधानीपूर्वक चलने जैसी प्रथाएँ विकसित हुईं। जैन–दर्शन ने अनेकान्तवाद (अनेक दृष्टिकोणों का

सिद्धान्त) और स्यादवाद (सशर्त कथनों का सिद्धान्त) के सिद्धान्तों के माध्यम से भारतीय दर्शन में योगदान दिया, जो बौद्धिक खुलेपन और लचीलेपन को प्रोत्साहित करता है।

जैन–धर्म की अहिंसा के प्रति कट्टर प्रतिबद्धता और बौद्धिक खुलेपन ने भारतीय नैतिक और ज्ञानमीमांसीय विचार में एक अद्वितीय योगदान दिया है। अहिंसा का इसका कठोर सिद्धान्त, जिसमें शाकाहार और सभी जीवित प्राणियों को नुकसान पहुँचाने से बचने पर जोर दिया गया है, ने भारतीय समाज की नैतिक संरचना को गहराई से आकार दिया है। अनेकान्तवाद का सिद्धान्त, जो सत्य के कई दृष्टिकोणों को स्वीकार करता है, बौद्धिक लचीलेपन और सहिष्णुता को बढ़ावा देता है, जो भारतीय दार्शनिक प्रवचन में महत्त्वपूर्ण है।

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और संचरण

प्राचीन भारत में ज्ञान के संचरण का प्राथमिक तरीका, मौखिक परम्परा थी, विशेष रूप से वेदों और मंत्रों के लिए इस मौखिक परम्परा को प्रामाणिक माना जाता था और इसे पिता से पुत्र या गुरु से शिष्य तक सम्प्रदाय (परम्परा) में पारित किया जाता था। गुरु–शिष्य मॉडल शिक्षा की एक पारम्परिक प्रणाली थी जो समग्र विकास, व्यक्तिगत निर्देश और एक करीबी गुरु–शिष्य सम्बन्ध पर जोर देती थी। यह मॉडल सदियों तक फला–फूला और इसकी आवासीय व्यवस्था की विशेषता थी जहाँ शिष्य अपने गुरु के साथ एक एकान्त वातावरण में रहते थे और औपचारिक निर्देश के माध्यम से ही नहीं, बल्कि दैनिक जीवन के अनुभवों और बातचीत के माध्यम से भी ज्ञान प्राप्त करते थे।

ज्ञान को स्मृति में रखने और मौखिक रूप से प्रसारित करने की सुविधा के लिए, ऋषियों ने कई स्मृति सहायक उपकरण विकसित किए। वैदिक मंत्रोच्चारण, अपनी लयबद्ध ताल और मधुर पैटर्न के साथ, एक शक्तिशाली स्मरक उपकरण के रूप में कार्य करता था। ग्रन्थों की संरचना और शैली को संक्षिप्त, सूत्र शैली में तैयार किया गया था, जिसमें तकनीकी शब्दावली से भरपूर एक अत्यधिक नाममात्र शैली थी, जो उन्हें याद रखने में आसान बनाती थी।

आधुनिक चुनौतियाँ और अनुकूलन

आधुनिक युग में, भारतीय सांस्कृतिक विरासत को वैश्वीकरण के कारण कई चुनौतियों और अवसरों का सामना करना पड़ रहा है। वैश्वीकरण ने पारम्परिक ज्ञान प्रणालियों और स्वदेशी शिल्पों को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में एकीकृत किया है, जिससे निर्यात में वृद्धि और रोजगार के अवसर बढ़े हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म भी कारीगरों का समर्थन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हालाँकि इसके साथ ही व्यावसायीकरण और सांस्कृतिक पहचान के कमजोर पड़ने जैसी चुनौतियाँ भी आई हैं। बड़े पैमाने पर उत्पादन, सांस्कृतिक विनियोग, बिचौलियों द्वारा शोषण और व्यावसायीकरण के कारण पारम्परिक ज्ञान का नुकसान जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, सांस्कृतिक प्रतिरोध और संरक्षण के आन्दोलन भी हुए हैं, विशेष रूप में आदिवासी समुदायों द्वारा जो अपने प्राकृतिक संसाधनों और सांस्कृतिक प्रथाओं की रक्षा कर रहे हैं। प्रौद्योगिकी भी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। वर्चुअल विरासत और नए मीडिया (जैसे खेल और एनिमेशन) का उपयोग ज्ञान के प्रसार और युवा पीढ़ियों को संलग्न करने के लिए किया जा रहा है। यह पारम्परिक भारतीय कला रूपों की दृश्य भाषा को एक आसानी से सुलभ समकालीन आभासी प्रतिमान में अनुवाद करके सांस्कृतिक विरासत के मूल्य को संरक्षित और प्रचारित करने में मदद करता है। सरकार भी संरक्षण के प्रयासों में शामिल है, जैसे भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (ASI) का पुनर्गठन और बेहतर वित्त पोषण। भौगोलिक संकेतक (GI) टैगिंग जैसी पहले भी पारम्परिक शिल्पों की प्रामाणिकता और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की रक्षा में मदद करती हैं।

वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के बीच गतिशील अन्तःक्रिया के लिए स्वदेशी मूल्यों के रणनीतिक अनुकूलन और पुनः पुष्टि की आवश्यकता है। वैश्वीकरण एक दोधारी तलवार है, जो भारतीय सांस्कृतिक विरासत के लिए खतरे और अवसर दोनों प्रस्तुत करता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन और सांस्कृतिक विनियोग जैसे खतरों का मुकाबला करने के लिए, एक सन्तुलित दृष्टिकोण आवश्यक है जो आर्थिक विकास के लिए वैश्वीकरण का लाभ उठाता है, जबकि प्रामाणिकता और बौद्धिक सम्पदा की सुरक्षा सुनिश्चित करता है। प्रौद्योगिकी का उपयोग, जैसे कि आभासी विरासत और नए मीडिया, युवा पीढ़ियों को सांस्कृतिक ज्ञान से जोड़ने और इसे व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण प्रदान करता है। भारतीय दर्शन के सिद्धान्त जैसेकि अन्तर्सम्बद्धता और वसुधैव कुटुम्बकम्, स्थायी अनुकूलन के लिए एक मार्ग–दर्शक ढाँचा प्रदान कर सकते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि सांस्कृतिक विरासत आधुनिक दुनिया में प्रासंगिक और जीवन्त बनी रहे। यह दर्शाता है कि संरक्षण केवल अतीत को स्थिर रखने के बारे में नहीं है, बल्कि भविष्य के लिए इसे सक्रिय रूप से अनुकूलित और समृद्ध करने के बारे में है।

सांस्कृतिक विरासत संरक्षण में भारतीय दर्शन की भूमिका

भारतीय दर्शन आधुनिक वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए 'आशा और ज्ञान का एक प्रकाश–स्तम्भ' है। प्राचीन शिक्षाएँ तनाव, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक विखंडन जैसे समकालीन मुद्दों के लिए व्यावहारिक समाधान प्रदान करती हैं। वे व्यक्तियों को केवल भौतिक सफलता से परे जाकर एक सन्तुलित, उद्देश्यपूर्ण अस्तित्व की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धान्त और प्रकृति के साथ सामंजस्य वैश्विक चुनौतियों जैसी जलवायु परिवर्तन

और सामाजिक अशान्ति के लिए एक समग्र प्रतिक्रिया प्रदान करता है। यह दर्शाता है कि भारतीय दार्शनिक विरासत केवल ऐतिहासिक रुचि का विषय नहीं है, बल्कि एक जीवन्त और गतिशील स्रोत हैं जो आज भी व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण के लिए प्रासंगिक मार्गदर्शन प्रदान करता है।

भारत की सांस्कृतिक विरासत 'सॉफ्ट पॉवर' का एक स्रोत है और समग्र मूल्यों में निहित वैश्विक नेतृत्व के लिए एक मॉडल है। योग और आयुर्वेद जैसी अवधारणाओं की सार्वभौमिक अपील, वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे सिद्धान्तों के साथ मिलकर, भारत को वैश्विक कल्याण और नैतिक शासन में योगदानकर्त्ता के रूप में स्थान देती है, जो विशुद्ध रूप से आर्थिक या राजनीतिक मॉडल के विकल्प प्रदान करती है। यह दर्शाता है कि भारतीय दर्शन केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए एक मूल्यवान संसाधन है, जो आधुनिक चुनौतियों के लिए समग्र और नैतिक समाधान प्रदान करता है। यह भारत की सांस्कृतिक विरासत को एक गतिशील और प्रभावशाली शक्ति के रूप में स्थापित करता है जो वैश्विक शान्ति, सद्भाव और सतत् विकास में योगदान कर सकती है।

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन में सांस्कृतिक विरासत की अवधारणा एक बहुआयामी और गतिशील स्वरूप को दर्शाती है, जो केवल भौतिक कलाकृतियों के संग्रह से कहीं अधिक है। पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – एक सन्तुलित और उद्देश्यपूर्ण मानव अस्तित्व के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रदान करते हैं, जो भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक आयामों को व्यवस्थित रूप से एकीकृत करते हैं। कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त नैतिक अनिवार्यताओं को रेखांकित करते हैं, जो सांस्कृतिक प्रथाओं को सदाचारी कार्यों की ओर मार्गदर्शन करने के लिए एक कारण तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। आत्मा, ब्रह्म और चेतना की अवधारणाओं पर विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण, चाहे वे अद्वैतवादी हों या द्वैतवादी, भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों की समृद्ध विविधता को बढ़ावा देते हैं। अहिंसा, वसुधैव कुटुम्बकम् और प्रकृति के साथ सामंजस्य जैसे सिद्धान्त भारतीय दर्शन में निहित गहरे पारिस्थितिक और सार्वभौमिक मानवतावादी लोकाचार को उजागर करते हैं, जो स्थायी जीवन और वैश्विक सद्भाव के लिए एक नैतिक ढाँचा प्रदान करते हैं।

वेदान्त, न्याय, सांख्य, योग, बौद्ध और जैन जैसे प्रमुख दार्शनिक प्रणालियों ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत को अपने अद्वितीय योगदानों से समृद्ध किया है। वेदान्त ने आध्यात्मिक प्राप्ति और समग्र जीवन के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रदान किया, जबकि न्याय ने ज्ञानमीमांसा और तर्कशास्त्र में मूलभूत योगदान दिया। सांख्य के द्वैतवादी ढाँचे ने विभिन्न मोक्षवादी मार्गों को उत्प्रेरित किया और योग ने भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों को समग्र कल्याण के लिए व्यावहारिक प्रथाओं में बदल दिया। बौद्ध–धर्म ने सामाजिक समतावाद और नैतिक आचरण की वकालत करके भारतीय समाज और दर्शन को रूपान्तरित किया, जबकि जैन–धर्म की अहिंसा और बौद्धिक खुलेपन के प्रति कट्टर प्रतिबद्धता ने भारतीय नैतिक और ज्ञानमीमांसीय विचार में एक अद्वितीय योगदान दिया। ज्ञान के संचरण के पारम्परिक तरीके, जैसे मौखिक परम्परा, गुरु–शिष्य मॉडल और स्मृति सहायक तकनीकें, भारतीय दार्शनिक विरासत के प्राथमिक संरक्षक थे, जो केवल स्थिर पाठ की बजाय जीवन्त संचरण पर जोर देते थे। आधुनिक चुनौतियों, विशेष रूप से वैश्वीकरण से उत्पन्न होने वाली, सांस्कृतिक विरासत के लिए खतरे और अवसर दोनों प्रस्तुत करती हैं। रणनीतिक अनुकूलन और स्वदेशी मूल्यों की पुनः पुष्टि, प्रौद्योगिकी के लाभों का लाभ उठाते हुए और सांस्कृतिक विनियोग से बचाव करते हुए महत्त्वपूर्ण है।

अतः भारतीय दार्शनिक सांस्कृतिक विरासत व्यक्तिगत विकास, सामाजिक सद्भाव और एक सार्थक अस्तित्व के लिए एक कालातीत मार्गदर्शिका प्रदान करती है। यह आधुनिक वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए 'आशा और ज्ञान का एक प्रकाश–स्तम्भ' है। वैश्विक मंच पर, भारत की सांस्कृतिक विरासत 'सॉफ्ट पॉवर' का एक स्रोत है और समग्र मूल्यों में निहित वैश्विक नेतृत्व के लिए एक मॉडल है। इस विरासत का संरक्षण और सम्बर्द्धन केवल अतीत का सम्मान करने के बारे में नहीं है, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों को सशक्त बनाने और एक अधिक सामंजस्यपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण वैश्विक समाज के निर्माण में योगदान करने के बारे में है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. द मीनिंग एण्ड प्रोसेस ऑव कल्चर, द्र॰ मेरी
2- Wikipedia
3. भारत एक खोज, जवाहरलाल नेहरू
4. *The Hindu View of Life*, डॉ॰ राधाकृष्णनन, पृ॰ 5–25
5. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, गोविन्दचन्द्र पाण्डे, पृ॰ 23
6. संस्कृति, परम्परा और आधुनिकता, डॉ॰ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ॰ 17–19
7. NCERT: भारतीय विरासत और संस्कृति
8. अर्थषास्त्र, कौटिल्य, 1.2.1, 1.2.10, 1.2.11
9. न्यायसूत्र, 1.1.1
10. भगवद्गीता, 5.27, 5.28
11. भगवद्गीता, 7.29
12. ऋग्वेद, 10.190.1
13. तैत्तरीय उपनिषद, 2.1.1
14. बृहदारण्यक उपनिषद, 1.4.10
15. बृहदारण्यक उपनिषद, 4.4.5
16. छान्दोग्य उपनिषद्, 3.14.1
17. महा उपनिषद्, 6/71
18. अथर्ववेद, 12.1.12
19. ऋग्वेद, भूमिसूक्त, 4.57
20. योगसूत्र, पतंजलि, 1.2